अध्याय -2

भारत में महिलाओं की राजनीतिक भागीदारी एवं पंचायती राज

आधुनिक विश्व में जब लोकतान्त्रिक शासन प्रणालियों को स्वीकृति मिल गई तो इसके लिये कुछ ऐसे प्रावधानों को भी आवश्यक समझा गया जो कि शासकों एवं शासितों के आपसी सम्बंधों एवं सीमाओं का भी निर्धारण कर सके | इसी उद्देश्य की पूर्ति हेतु लोकतान्त्रिक शासन व्यवस्थाओं ने एक ऐसे संविधान के निर्माण को आवश्यक समझा जो कि इन आदर्शों को परिभाषित करते हुये संतुलन एवं स्थाईत्व को सुनिश्चित कर सके | अतः ऐसे संविधान के निर्माण व उसकी सफलता उस प्रतिनिधि सभा की निर्वाचन रीति, कार्य शैली एवं नजरिये पर निर्भर करेगा जिसे इस महान कृत्य का दायित्व सौंपा गया है | इन संविधान सभाओं की मूल प्रेरणा उन लोकतान्त्रिक क्रांतियों में पनपे विचारों से मिली जो सत्तरहवीं एवं अठारहवीं शताब्दियों की देन रही | इन क्रांतियों की भावना के अनुसार शासन संचालन के मूल कायदे कानून का निर्माण उस विशेषज्ञ सभा द्वारा ही किया जाना चाहिए जो की आम जन के द्वारा निर्वाचित की गई हो | आईवर जेनिंग्स के अनुसार "एक ऐसी प्रतिनिधि सभा जिसे वर्तमान संविधान की जाँच करने या फिर नए संविधान की तलाश करने एवं अपनाने के लिए चुना गया हो वह संविधान सभा के रूप में जानी जायेगी |"[1]

हालांकि भारत की पराधीनता के लम्बे एवं कष्टप्रद दौर ने जनता को एकता के सूत्र में बांधकर सामूहिक हितों की रक्षा की भावना से भर दिया | इसके साथ ही "ब्रिटिश हुकूमत की नीतिओं एवं स्वतंत्रता आन्दोलन के लम्बे संघर्ष व प्रशासनिक अनुभवों ने समस्त भारतवासियों के मन में लोकतांत्रिक मूल्यों के प्रति गहरी आस्था

का ऐसा भव्य भवन बना दिया था, जिसमे हर एक भारतवासी की लालसाओं को तो नहीं बल्कि आवश्यकताओं को पूरा किया जा सके"[2] जैसा की राष्ट्रीय आन्दोलन के नायक (गाँधी जी) कल्पना करते थे | "ब्रिटिश हुकूमत लगातार इस कुप्रचार में लगी थी की भारत की सामाजिक व धार्मिक व्यवस्था, इतिहास परंपरा एवं जलवायु लोकतान्त्रिक शासन व्यवस्था के लिए उपयुक्त नहीं हैं | अतः भारतवासियों के लिये तो निरंकुश शासन ही बेहतर साबित हो सकता है |"[3] "इससे प्रेरित होकर भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन के नेताओं ने लोकतान्त्रिक शासन व्यवस्था के भारतीय मॉडल को विकसित कारने एवं उसकी सफलता सुनिश्चित करने को अपने परम दाईत्व के रूप में स्वीकार कर लिया |"[4] इसलिए भारतीय संविधान के निर्माण के लिए भारतीयों ने केवल उसी सभा को मान्यता देने की दृढ मांग की जो न केवल पूर्ण रूप से भारतीय हो बल्कि भारतवासियों द्वारा ही बनाई गई हो | अतः "अंग्रेजों को बाध्य होते हुये पहली बार 1942 में क्रिप्स मिशन के माध्यम से यह स्वीकार करना पड़ा कि न केवल प्राथमिक रूप से बल्कि पूर्णरूप में संविधान निर्माण भारतीयों के हाथ में होगा और क्रिप्स ने यह स्पष्ट भी कर दिया कि भारत के लोग अपना संविधान स्वयं बनायेंगें |"[5]

इस तरह भारत में आजादी के समय से ही संवैधानिक प्रावधानों द्वारा यह प्रयास रहा है कि भारत के लोगों के साथ किसी भी आधार पर किसी भी तरह के अतार्किक भेदभाव के लिये कोई गुंजाईश नहीं रहे | "हालाँकि आजादी से पहले ब्रिटिश शासन काल में भारत में महिला मताधिकार का मुद्दा पहली बार एनी बिसेंट के द्वारा 1917 में उठाया गया | 1919 में जब बोरो कमीशन भारत आया तब एक प्रतिनिधि मण्डल एनी बेसेंट के नेतृत्व में उनसे भी मिला जिसमे सरोजनी नायडू भी शामिल थी | इस तरह सबसे पहले 1920 में मद्रास विधान परिषद् में, फिर 1921 में मुम्बई व 1929 तक सभी प्रांतीय विधान सभाओं में महिलाओं को मताधिकार प्रदान कर दिए गए | 1929 के पहले गोलमेज सम्मलेन में महिला प्रतिनिधि के रूप

में ऑल इंडिया वुमन कॉन्फ्रेंस की राधा बाई सुभरयान व बेगम शाहनवाज शामिल हुई एवं महिलाओं के लिये आरक्षण की भी मांग की गई | 1931 में कॉंग्रेस ने अपने कराची अधिवेशन में महिलाओं को समान मताधिकार देने का प्रस्ताव पारित कर दिया और 1935 में प्रांतीय परिषदों में महिलाओं के लिये भी 4 पद आरक्षित कर दिए गये |"[6]

इस तरह महिलाओं को आजादी के पहले से ही वैधानिक रूप से समान रखने के प्रयास किये गए | संविधान सभा की बैठक में नेहरू द्वारा कहे गए शब्दों में हमें इस भावना की झलक मिल रही है, कि "हमें छोटी एवं कम जरुरी बातों को टकराव व विरोध के बावजूद हासिल करने पर ध्यान न देकर आपसी सहयोग एवं एक मत से जो कुछ भी हासिल हो सके उस पर केन्द्रित रहते हुये आगे बढ़ना चाहिये |"[7] नेहरू की इस विनम्र अपील में आम जन के हितों को हृदय में संजोये रहते हुये निजी स्वार्थों से रहित एवं सर्वहितकारी लक्ष्यों से प्ररित रहते हुये अपने कर्तव्यों को निभाने की दिशा में बढ़ने की प्रेरणा झलकती है | साथ ही "नेहरू द्वारा प्रस्तुत एवं संविधान सभा में 22 जनवरी 1947 को अंगीकृत उद्देश्य प्रस्ताव प्रत्येक चरण में प्रेरक बना रहा |"[8] भारतीय संविधान के निर्माण में सामान्य तौर से संविधान सभा के सदस्यों द्वारा इन्ही आदर्शों से प्रेरित एक आम सहमती वाले वातावरण में सभी महत्वपूर्ण मुद्दों को हल करने के प्रयास भी रहे | जिससे भारत के सभी लोगों के लिए एक समान एवं विधि व सदाचार के अधीन न्याय, स्वतंत्रता एवं समानता की व्यवस्था संभव हुई | और अल्पसंख्यकों, दलितों व जनजातिय क्षेत्रों के साथ अन्य पिछड़े वर्गों की रक्षा के लिए भी विशेष उपबंध हो सके |

लेकिन इसके बावजूद भी अकेले संवैधानिक प्रावधानों के बलबूते, सामाजिक इच्छाशक्ति के अभाव में कई तरह की विषमताओं ने अपने पैर जमा लिये | जिनकी हमारे विशेष अनुभवी व कुशलतम के साथ – साथ नेक नियति एवं दृढ इच्छा शक्ति रखने वाले संविधान निर्माताओं ने भी कल्पना नहीं की होगी कि भला इस कदर

भोली - भाली आम जनता इन भेदपूर्ण विषमताओं से जूझते हुये अवसरों से वंचित होकर अपने उन्नति पथ से विचलित हो जायेगी | ऐसी ही कुछ विषमताओं के कारण महिलाओं की स्वतंत्रता, समानता व अधिकारों की अवधारणा निरर्थक लगने लगी | क्योंकि महिलाओं की स्थिति में स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भी संतोषजनक सुधार नहीं हो पाए | इसी तरह के नतीजे राजनीतिक क्षेत्र में भी देखने को मिले जब पहले आम चुनाव में महिला प्रतिनिधियों की भागीदारी नगण्य ही संभव हो पायी | इसका उदहारण प्रथम लोकसभा चुनावों में जीतकर आयी महिला प्रतिनिधियों के रूप में देख सकते हैं | यही नहीं संविधान में सार्वजानिक वयस्क मताधिकार तो दे दिया गया लेकिन व्यवहार में कुछ अलग ही नतीजे सामने आये | जब चुनाव आयोग द्वारा मतदाता सूची बनाई गई तो हजारों महिलायें सही तरीके से पंजीकृत नहीं हो सकी क्योंकि उनकी पहचान ही पुरुषों के पीछे होती है | इस सन्दर्भ में यह तथ्य भी महत्तवपूर्ण है कि "सदन के नेता एवं प्रथम प्रधानमंत्री के रूप में नेहरू के मुख्यमन्त्रियों से महिलाओं को उचित प्रतिनिधित्व देने के अनुरोध के बावजूद 499 में से 22 महिलायें ही प्रथम लोकसभा के लिये निर्वाचित हो पाती हैं |"[9] इस पर नेहरू जी ने खेद प्रकट करते हुये कहा कि "महिलाओं को बराबरी का दर्जा, अधिकार व अवसर दिए बिना लोकतंत्र की कल्पना नहीं की जा सकती, न ही हम वास्तविक एवं मूल विकास को हासिल कर सकते हैं | अतः हमें महिलाओं को अपनी भूमिका निभाने का पूरा अवसर देना होगा और अगर ऐसा नहीं कर पाए तो इसके लिये हम ही दोषी होंगें एवं यह हमारे देश के लिए भी नुकसानदायक साबित होगा | उन्होंने महिलाओं के कार्यों को औसत पुरुषों से बढ़िया बताते हुये कहा कि हमारे वस्तुगत नहीं होने के कारण हमारे विचारों की कुछ सीमाएं हैं, जो पुरुष प्रधान समाज एवं पुरुषों द्वारा ही निर्मित कायदे कानूनों के रूप में विधमान हैं | लेकिन भारत का भविष्य पुरुषों के बजाय महिलाओं पर अधिक निर्भर करेगा |"[10]

इस तरह राजनीतिक क्षेत्र में महिलाओं को ऐसे अवसर उपलब्ध करवाने की मांग बढ़ती गई जिससे महिलाओं की अपने समान अधिकारों तक सुगम पहुँच संभव हो सके | बोसांके के शब्दों में "अधिकार कोई कल्पना व कामना की चीज नहीं, बल्कि यह तो तथ्य और युक्ति के रूप में होते हैं |"[11] जब हम सभी के लिये समान अधिकारों की बात करते हैं तो हमें मुख्य रूप से तीन बातों को अवश्य ही ध्यान में रखना चाहिये | "पहली अधिकार व कर्तव्य आपस में जुड़े हुये हैं यानि कि हर एक अधिकार में एक कर्तव्य भी छिपा होता है | दूसरी अधिकारों की स्वीकृति समाज से अवश्य ही मिलनी चाहिये अन्यथा वह बेकार हैं | तीसरी अधिकार निस्वार्थ दावे हैं जिन्हें सार्वजनिक रूप में लागू किया जा सकता हो |"[12]

"आजादी के बाद के अनुभव से महिलाओं ने यह महसूस कर लिया कि समानता को प्राप्त करना इतना आसन काम नहीं है | अतः 1960 के दशक में अनेक नवीन मुद्दों के साथ महिला आन्दोलन की दूसरी लहर राजनीतिक सक्रियता के रूप में उभर कर सामने आई |"[13] और अब महिला प्रतिनिधित्व सुनिश्चित करने वाले विशेष प्रावधान किये जाने की मांग जोर पकड़ती गई | जो कि पुरुषों को ऐसे कर्तव्यों को निभाने की याद दिलाती है जिसमें पूरी महिला आबादी के निःस्वार्थ दावे के रूप में सामाजिक स्वीकृति दी जानी आवश्यक समझा गया हो | साथ ही अब तक हुये आम चुनाओं के नतीजे एवं उसमे जगह बना पाई महिला उम्मीदवारों की संख्या इस मांग को अधिक मजबूत आधार प्रदान करती रही है | लोकसभा में महिला सदस्यों की वास्तविक स्थिति को देखने से हम इस मांग के पीछे छिपी विसंगती को महसूस कर सकते हैं | इसके कारण ही महिलायें अपने आप को राजनीति की मुख्या धरा में पिछड़े हुये वर्ग के रूप में महसूस करते हुये उचित सुधारों एवं विशेषाधिकारों की मांग करती रही हैं |

भारत में अब तक हुये लोकसभा चुनाओं के नतीजों में से कुछ मुख्य चुनाओं के परिणाम निम्न तालिका के माध्यम से दर्शाने के प्रयास किये गए हैं | जो राजनीति में

महिलाओं के पिछड़ेपन एवं महिलाओं के लिये विशेष उपायों या सुविधाओं की मांग के आपसी सम्बन्ध को दर्शाते हैं |

क्र. सं.	चुनाव वर्ष	लोकसभा क्रम संख्या	कुल सीटों की संख्या	निर्वाचित महिला सांसदों की संख्या	महिला सांसदों का कुल संख्या में प्रतिशत
1	1952	पहली	499	22	4.4 %
2	1971	पांचवीं	521	22	4.2 %
3	1977	छठवीं	544	19	3.4 %
4	2014	सोलहवीं	545	66	12 .11 %

उपरोक्त तालिका में प्रदर्शित चुनावी नतीजों के अनुसार “1952 में सम्पन्न प्रथम आम चुनाव में कुल 499 स्थानों में से केवल 22 स्थानों पर ही महिला उम्मीदवार निर्वाचित हो सकी |”[14] जो भारतीय नागरिकों की आधी आबादी के साथ हुये भेदभाव को दर्शाता है | क्योंकि हम ऐसा नहीं कह सकते हैं कि भारतीय स्वत्रंता आन्दोलन में महिलाओं का योगदान कम रहा है या भारत को आजाद कराने में उन्होंने कष्ट नहीं झेला हो | बल्कि महिलाओं ने राष्ट्रीय आन्दोलन के सभी प्रमुख चरणों में सराहनीय सहयोग दिया है | जिसकी प्रशंसा व गौरवगाथा हम आज भी गाते हैं, तो फिर हम महिलाओं को लोकतान्त्रिक संस्थाओं में उनका उचित हिस्सा क्यों नहीं दे पा रहे हैं |

हमने अपनी आजादी के साथ एक ऐसी शासन व्यवस्था, जो कि एक पंक्ति में सबसे पीछे चल रहे निर्बल व असहाय व्यक्ति का पूरा ख्याल रखती हो उसे अपनाया | फिर भी कुछ हिस्से अगर पीछे छूट जाये तो यह हमारी ही कमी होगी | जैसा की हमारे पूर्व प्रधान मंत्री ने चिंता जताई है कि “यदि हम मानवता के एक बड़े हिस्से को

अलग करके उन्हें सामाजिक एवं अन्य अधिकारों से वंचित कर दें तो वे निश्चित ही विद्रोह कर देंगे और ऐसा करते समय वे अपनी जगह सही भी होंगे |"[15] इस तरह हम वास्तविक लोकतंत्र को कभी हासिल नहीं कर पायेंगें |

उपरोक्त तालिका में क्रम संख्या दो में दर्शाये गए आंकड़े जो की पांचवी लोकसभा चुनाव परिणामों की झलक दिखलाते हैं | जिसके अनुसार एक बार फिर केन्द्रीय विधायीका में महिला प्रतिनिधियों की संख्या का प्रतिशत कुल सदस्यों के अनुपात में निम्नतम स्तर 4.2 प्रतिशत पर पहुँच गया | हालाँकि संख्या के लिहाज से तो यह प्रथम लोकसभा चुनावों के समतुल्य ही बना रहा | लेकिन लोकसभा में सदस्यों की कुल संख्या में वृद्धि होने के कारण यह अब तक के न्यूनतम प्रतिशत को प्रदर्शित करता है | यहाँ यह बात भी ध्यान देने योग्य है, कि भारत की केंद्रीय विधायिका में यह न्यूनतम प्रतिशत उस समय पर हुआ है, जब सदन के नेता की भूमिका भी एक अत्यंत प्रभावशाली महिला ही संभाल रही थी | इससे यह बात स्पष्ट होती है कि जो महिलायें राजनीति में उच्च पदों पर आसीन थी वे आम महिलाओं की श्रेणी में नहीं आती थी | यानि की उनके वहां तक पहुँचने में केवल खुद की भूमिका ही नहीं बल्कि कोई दूसरे कारक भी सहयोगी रहे हैं | अर्थात् आम महिलाओं के इस स्तर तक पहुँचने की संभावनाएं अंधकारमय रही हैं | दूसरा 1975 को संयुक्त राष्ट्र संघ ने अन्तराष्ट्रीय महिला वर्ष के रूप में घोषित कर दिया | यदि इस दृष्टि से भी देखें तो 1975, यानि महिला वर्ष में राष्ट्रीय स्तर पर महिला प्रतिनिधिओं की संख्या अपने अब तक के न्यूनतम स्तर पर थी |

उपरोक्त तालिका में क्रम संख्या 3 पर 1977 में सम्पन्न हुये छठी लोकसभा चुनाव परिणामों के अनुसार कुल निर्वाचित महिला प्रतिनिधियों की संख्या एक बार फिर कम हो गई और अब तक के नए न्यूनतम स्तर 19 पर जा पहुँची | यहाँ यह उल्लेखनीय है "की 1975 – 1985 को संयुक्त राष्ट्र संघ ने अन्तराष्ट्रीय महिला दशक के रूप में घोषित किया था | और इसी दौरान लोकसभा में महिला सांसदों की

संख्या ने अपने नए न्यूनतम स्तर कुल सदस्यों के मात्र 3.4 प्रतिशत को प्राप्त कर लिया |"[16] अर्थात् राजनीति में महिला प्रतिनिधियों की भागीदारी को बढ़ाने के जब भी नए प्रयास किये गए तब-तब उनकी संख्या एक नए न्यूनतम स्तर पर जा पहुँची | हालाँकि हो सकता है ये सब कुछ अद्भुत संयोग ही बने हो, लेकिन यह तस्वीर तो स्पष्टतया पिछड़ेपन के ही संकेत दे रही थी |

अंततः कुछ सकारात्मक परिणाम भी मिलने लगे, जब 1977 के बाद सम्पन्न आम चुनाओं में महिला प्रतिनिधिओं की संख्या में वृद्धि ने कछुआ चाल से सुधारों के संकेत दिए हैं | जिसे हम तालिका के क्रम संख्या 4 में 16 वीं लोकसभा के रूप में सम्पन्न चुनाव परिणामों के माध्यम से देख सकते हैं | जो अब तक के उच्चतम स्कोर के रूप में 66 महिला प्रतिनिधियों को दर्शाती है | अर्थात् वर्तमान में 16 वीं लोकसभा में महिला सांसदों का प्रतिशत 12 .11 जो कि अब तक का सर्वोतम प्रदर्शन भी है | लेकिन भारत में महिलाओं की कुल जनसंख्या के अनुपात में केंद्रीय विधायिका में महिलाओं की यह संख्या संतोष जनक नहीं कही जा सकती है | और अब तक लगभग यही स्थिति सभी राज्य विधायिकाओं में भी बनी रही है | अतः जब इस स्थिति के सन्दर्भ में महिला वर्ग स्वयं महसूस करे तो यह हमें नेहरू जी की चेतावनी के प्रकट होने की याद दिलाती है, कि पिछड़े वर्ग विद्रोह कर देंगें और यह विद्रोह सही भी होगा | "भारत का संविधान केवल राजनीतिक दस्तावेज ही नहीं है बल्कि यह सामाजिक कल्याण के लिये भी प्रतिबद्धता धारित है | विशेष रूप से समाज के पिछड़े एवं कमजोर वर्गों के उत्थान के लिये | जिसकी व्यवस्था मूल अधिकारों के साथ ही अनुछेद 338, 339 एवं महिलाओं व बच्चों के लिये विशेष रूप से राज्य के नीति-निदेशक तत्वों के माध्यम से की गई है |"[17] जो कि परिस्थियों को मद्देनजर रखते हुये उनके लिये विशेष प्रावधान करने की छूट देता है |

अतः महिला वर्ग की इस असंतोष भरी उत्तेजक मांग को भारतीय संविधान में लोकतान्त्रिक शासन प्रणाली के विकेंद्रीकरण के माध्यम से संतुलित करने का प्रयास

किया गया "लोकतंत्र केवल सरकार का रूप ही नहीं बल्कि यह एक सामाजिक व्यवस्था भी है अपने व्यापक अर्थ में लोकतंत्र एक राजनीतिक अवस्था, सामाजिक परिस्थिति एवं नैतिक धारणा है |"[18] लोकतान्त्रिक शासन प्रणाली के क्रियान्वन हेतु जब प्रतिनिधि लोकतंत्र को स्वीकार कर लिया जाता है तो इसके विस्तार व जनसंख्या की कोई सीमायें नहीं होती हैं और जनता कि अपने प्रतिनिधिओं से दूरी लगातार बढ़ती जाती है | अतः आमजन कि बजाय कुछ लोग ही अपने प्रतिनिधियों के साथ संपर्क में रहते हुये जनमुद्दों पर विचारणा में शामिल हो पाते हैं | आपसी संपर्क व विचार विमर्श के अभाव में जन समस्यायें व हितसंवर्धन के मुद्दे नीति निर्माणकारी संस्थाओं तक नहीं पहुँच पाते | इस तरह शासन तंत्र में शामिल लोग जनता के वास्तविक प्रतिनिधि नहीं रह जाते हैं | साथ ही प्रतिनिधि अपने सार्वजनिक उत्तरदायित्व से भटक कर प्रशासनिक दुरूपयोग को अंजाम देने में भी हिचक नहीं मानते हैं |

इस समस्या से मुक्त होने एवं लोकतान्त्रिक व्यवस्था के व्यवहारिक संचालन के लिये लोकतंत्र की सहभागिता मूलक व्यवस्था को अपनाना ही सर्वोतम उपाय हो सकता है | अतः नागरिकों की प्रत्यक्ष सहभागिता को एक अवसर में बदलने के लिये ही भारतीय संघीय शासन प्रणाली में लोकतंत्र के तीसरे या निम्नतम स्तर की स्थापना भारतीय संविधान में दो नये अध्याय शामिल करते हुये की गई है | जिसके द्वारा भारत में राजनीतिक सहभागिता से वंचित वर्ग के रूप में महिलाओं के साथ ही अन्य पिछड़े वर्गों के लिये भी विशेष प्रावधान किये गए | ताकि इन वर्गों का राजनीतिक प्रतिनिधित्व एवं सहभागिता संभव व सुनिश्चित हो सके | इन सुधारों ने 73 वें एवम् 74 वें संविधान संशोधन के रूप में ख्याति प्राप्त की है | इस तरह से इन दोनों संवैधानिक संशोधनों के मूलभूत प्रावधानों के अधीन यह व्यवस्था पूरे देश में विधिवत रूप से लागू की गई |

पंचायती राज एवं 73 वाँ संविधान संसोधन -

भारत में पंचायती राज संस्थाओं एवं स्थानीय शासन की जड़े काफी गहरी रही हैं | ग्रामीण समुदाय ने न केवल आर्थिक और सामाजिक दृष्टि से बल्कि राजनैतिक दृष्टि से भी स्वतंत्र ईकाई के रूप में अपनी पहचान रखी है | परन्तु समय के साथ इसके स्वरूप व कार्य क्षेत्र में बदलाव होते रहे हैं | वैदिककाल से ही ग्राम समुची राजव्यवस्था की धुरी के रूप में कार्य करते रहे हैं | वैदिक युग मे प्रशासन की आधारभूत ईकाई ग्राम थी जिसके मुखिया को "ग्रामीणी" कहा जाता था | कौटिल्य ने गाँव के मुखिया को "ग्रामिक" कहा है, साथ ही अपनी रचना अर्थशास्त्र में आदर्श गाँव की भी चर्चा की | इस प्रकार चन्द्र गुप्त मौर्य के समय तक ग्रामीण व्यवस्था में किसी तरह का कोई हस्तक्षेप नहीं किया गया |"[19]

आर्यो के गांव का मुखिया ग्रामीणी कहलाता था | रामायाण और महाभारत काल में भी "ग्राम" के मुखिया ग्रामीणी का वर्णन मिला है | "शुक्र नीति सार मे ग्रामीण जीवन एवं संगठन का वर्णन मिलता है जहाँ पंचायतों के हर वर्ष चुनाव होते थे जिसमे महिलाएं भी भाग लेती थी |"[20] मुगलों ने भी शुरू में स्थानीय प्रशासनिक व्यवस्था में कोई दखल नहीं दिया और इसके माध्यम से ही अपने शासन को मजबूत बनाने के प्रयास किये | लेकिन मुगलों ने मजबूती से जमने के बाद अपने ढंग से विकेन्द्रीकरण को मजबूत करते हुये जमींदारी प्रथा आरम्भ की | और ग्रामीण जीवन में स्वशासन व्यवस्था के जो भी तत्व थे जमींदारों के माध्यम से उनका विनाश शुरू कर दिया | इस तरह न केवल सल्तनत काल में बल्कि मुगलकाल में भी भारत में स्थानीय शासन संस्थाएं तो बनी ही रही | "मौर्य काल व गुप्त काल से चली आ रही पंचायत की परम्परा सोलहवीं शताब्दीं में भी विद्यमान थी जो कि हमे भारत मे पंचायत व्यवस्था की निरन्तरता का एहसास कराती है |"[21]

ब्रिटिश काल - अंग्रेजों ने भारतीयों को अयोग्य समझते हुये उन्हें किसी तरह की शक्ति एवं उत्तरदायित्व नहीं सौंपना चाहा और प्राचीन संस्थाओं के बचे-खुचे अवशेषों को

भी मिटाने का ही प्रयास किया | लेकिन पंचायतों को एक आधुनिक रूप में ढालने या स्थानीय शासन को विकसित करने का कार्य भी ब्रिटिश काल में ही हुआ साथ ही पंचायतों को संगठित व निर्वाचित स्वरूप भी मिला | कुछ पश्चिमी प्रभाव भी इस काल मे पड़े जिससे स्थानीय शासन व्यवस्था का विकास संभव हुआ | लेकिन अंग्रेजों ने ग्रामीण के बजाय नगरीय स्थानीय शासन संस्थाओं पर अधिक ध्यान दिया | ब्रिटिश काल में स्थानीय शासन का आरम्भ 1687 में मद्रास नगर निगम की स्थापना से माना जा सकता है |"[22] 1870 में स्थानीय स्वायत्त शासन के विकास की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम लार्ड मैयो ने विकेन्द्रीकरण के प्रस्ताव के माध्यम से उठाया | लेकिन मैयो प्रस्ताव भी वास्तविक स्वायत शासन संस्थाओं की स्थापना नहीं कर सका |

अंततः स्थानीय प्रशासन के विकास की दिशा में 1882 के रिपन प्रस्तावों ने ही कुछ मजबूत एवं व्यावहारिक प्रावधानों के साथ प्रसीद्दी हासिल की | जिन्हें स्थानीय स्वायत्त शासन के मेग्नाकार्टा के रूप में जाना गया | पंचायत शब्द का प्रयोग पहली बार रॉयल कमीशन ने अपनी रिपोर्ट 1909 में ग्रामीण क्षेत्रों के लिए पंचायतों के महत्व के तहत किया | 1916 में तिलक के नारे स्वराज मेरा जन्म सिद्ध अधिकार है मै इसे लेकर ही रहूँगा से प्रभावित होकर 1917 में ब्रिटिश सरकार ने स्थानीय शासन के क्षेत्र में कुछ नवीन सुधारों की घोषणा की | 1919 में स्थानीय शासन को प्रान्तीय सरकारों को सौंप दिया | जिससे स्थानीय स्वायत्त शासन में प्रान्तों के अनुसार विविधता आ गई | 1935 में प्रान्तीय स्वायत्ता के साथ ही पंचायतों को जन प्रतिनिधित्वकारी संस्थायें बनाने की दिशा में फिर प्रयत्न शुरू हुये | लेकिन द्वितीय विश्वयुद्ध के कारण नई अड़चन गवर्नर शासन की स्थापना के रूप में उभरी जो की

एक बड़ी बाधा बन गई |"[23] अतः ब्रिटिश काल में शासकों की राजनीतिक इच्छाशक्ति के अभाव एवं आर्थिक व प्रशासनिक सहयोग की कमी झलकती रही |

स्वतंत्र भारत में स्थानीय शासन - भारतीय संविधान के निर्माण का कार्य आजादी से पहले 1946 में ही शुरू हो गया था | संविधान सभा में पेश उद्देश्य प्रस्ताव में पंचायतों के बारे में कोई उल्लेख नहीं किया गया था | 1947 में संविधान के मसौदे की समीक्षा के लिये एक समिति बनी जिसने अपनी सिफारिशें 1948 में पेश की | 1948 में ही राज्यों के स्वायत्त शासन मंत्रियों का एक सम्मेलन आयोजित किया जिसमे नेहरू ने कहा कि "स्थानीय स्वायत्त शासन एक सच्ची लोकतान्त्रिक व्यवस्था का आधार है और होना भी चाहिए | लेकिन हमें आदत हो गई है कि हम प्रजातंत्र को नीचले स्तर से नही देखते परन्तु जब तक प्रजातंत्र की इन आधारशिलाओ की मजबूती एवं विकास नहीं होगा तब तक उच्च स्तर पर सफलता सुनिश्चित नहीं की जा सकती |"[24]

यहीं से पंचायतों पर बहस छिड़ गई | जिसका शुभारम्भ अम्बेडकर ने मैटकाफ को उद्दृत करते हुये किया की "राजवंश के बाद राजवंश आते चले गये परन्तु ग्राम समुदाय में कोई बदलाव नहीं हुआ | यह अपने तक ही सीमित रहा इसे दीन-दुनिया की कोई परवाह नहीं रही, फिर हमें गाँवो पर गर्व कैसा | गाँव तो अज्ञानता, साम्प्रदायिकता एवं संकीर्णता के गढ़ रहे हैं, अतः हमें व्यक्ति को ही केंद्रीय इकाई मानना चाहिये |"[25] साथ ही "नेहरू ने भी गांधीजी को एक पत्र के जबाब में लिखा की गाँव सच्चाई एवं अहिंसा की तस्वीर कैसे हैं मेरी समझ से बाहर है | गाँव के लोगों में झूठ बोलने की आदत के साथ ही हिंसक प्रवृति व संकुचित धारणा होती है, इसलिए गाँव सांस्कृतिक एवं बौद्धिक रूप से पिछड़े होते हैं |"[26] जबकि जे. डी. सेठी के अनुसार गांधीजी ने काँग्रेस के कुछ नेताओं से कहा कि मेरे से सलाह मशविरा करने की तकलीफ मत उठाया करो, यदि तुम पंचायतों को लोकतंत्र का केन्द्र नहीं

बना सकते तो | इस विषय पर लम्बी बहस के बाद के. संथानम ने एक प्रस्ताव रखा जिसमे पंचायतों को संगठित करते हुये आवश्यक अधिकार एवं शक्तियाँ देने की पैरवी की गई थी | इस तरह पंचायतों को अनुछेद 40 के तहत राज्य के नीति निदेशक तत्वों के रूप में जगह मिल पाई | हालाँकि इस सम्बन्ध में यह अंबेडकर की भारी चूक ही कही जा सकती है कि अनुसूचित जातियों के सच्चे हिमायती होने के बाद भी वे पंचायतों के खिलाफ चले गए | जिससे अनुसूचित जातिओं के साथ ही अन्य पिछडे वर्गों को भी एक लम्बे समय तक वंचना को झेलना पड़ा |

राज्यों पर निर्भरता एवं प्रशिक्षण के अभाव के कारण पंचायतों की स्थिति में विशेष बदलाव नहीं हुये | आजादी के बाद योजनाओं के दौर की शुरुआत हुई, इसी क्रम में 1952 में सामुदायिक विकास कार्यक्रम प्रारंभ हुआ |1953 में विस्तार सेवा के माध्यम से इसे पूरे देश में लागू कर दिया गया | लेकिन नौकरशाही की प्रभावशीलता ने नागरिक सहभागिता को पनपने ही नहीं दिया और यह कार्यक्रम की विफलता के लिये जिम्मेदार भी मानी गई |

इस विफलता के कारणों की खोज एवं निजात पाने के रास्ते तलाशने के लिये बनी बलवन्त राय मेहता समिति के सुझावों के परिणामस्वरूप एक ग्रामीण योजना लागू की गई | मेहता समिति की सिफारिशों के अनुसार पंचायती राज की त्रिस्तरीय संरचना के द्वारा प्रजातंत्रीय विकेन्द्रीकरण के प्रयास किये गये | राजस्थान पहला राज्य बना जिसने पंचायत राज को लागू किया | जिसका शुभारंभ 2 अक्टूम्बर, 1959 को प्रधानमंत्री जवाहर लाल नेहरू ने राजस्थान के नागौर जिले से किया | इसके बाद दूसरे राज्यों द्वारा भी पंचायत राज व्यवस्था को स्वीकार कर लिया गया | समिति ने अपनी सिफारिशों में “योजना एवं प्रशासन दोनों का ही लोकतान्त्रिक विकेंद्रीकरण करते हुये इसे एक प्रतिनिधि सभा को सौंपने की मांग रखी जो कि जनता द्वारा निर्वाचित की गई हो |

निर्वाचित प्रतिनिधिओं में दो ऐसी महिलाओं को भी जगह दी जो क्रमशः अनुसूचित जाति एवं जनजाति से हों और साथ ही आवश्यक वित्तीय संसाधन भी देने की मांग की |"[27] इससे लोकतान्त्रिक व्यवस्था में जनभागीदारी बढ़ी, विकास की भावना जगी एवं व्यवस्था के प्रति उत्साह भी बढ़ा | लेकिन समय पर चुनाव नहीं होने एवं केन्द्रीयकरण की प्रवृति के साथ ही नौकरशाही के बढ़ते हस्तक्षेप के कारण जल्दी ही जनता का उत्साह टूट गया | अतः जनता की आकांक्षाये अधूरी ही रह गई |

अब तक की विफलताओं पर काबू पाने के लिये दिसंबर 1977 में केंद्र में बनी जनता पार्टी की सरकार ने अशोक मेहता आयोग नियुक्त किया, ताकि पंचायतों को सक्षम कुशल और जनोपयोगी बनाया जा सके है | लेकिन मेहता समिति की सिफारिशों को दलगत राजनीति की भेंट चढ़ाते हुये कूड़ेदान में जगह दे दी गई | हालाँकि मेहता समिति की सिफारिशों के आधार पर कर्नाटक, पश्चिम बंगाल, आँध्रप्रदेश एवं जम्मू कश्मीर ने कुछ सुधार जरूर किये | परन्तु केवल पश्चिम बंगाल ही ऐसा राज्य है जहाँ 1978 के बाद चुनाव समय पर करवाये गए हैं |"[28] "मेहता समिति ने द्विस्तरीय पंचायतों जिला एवं मण्डल पंचायत का समर्थन किया जिनका कार्यकाल 4 वर्ष हो | साथ ही दोनों स्तरों पर उन 2 महिलाओं को भी परिषद् के सदस्य के रूप में जगह देने की कही जो जिला पंचायत के चुनाव में सबसे अधिक मत प्राप्त कर सकें |"[29]

इसके बाद मार्च 1985 में योजना आयोग ने ग्रामीण विकास एवं गरीबी उन्मूलन की प्रशासनिक व्यवस्था के सम्बन्ध में जी.वी.के. राव समिति बनाई गई | उसने भी समाज के कमजोर वर्ग एवं महिलाओं को इन संस्थाओं में पर्याप्त प्रतिनिधित्व देने की सिफारिश की | साथ ही पंचायतों के वास्तविक लोकतान्त्रिक विकेंद्रीकरण किये जाने के ठोस सुझाव भी दिए |

नवम्बर 1986 में लोकतान्त्रिक विकास एवं पंचायती राज के पुनरुद्धार के लिये राजीव गांधी के काल में बनी लक्ष्मीमल सिंघवी समिति ने पहली बार पंचायतीराज संस्थाओं को संवैधानिक दर्जा देने की मांग की | उन्होंने नीचे से ऊपर की तरफ उन्मुख ऐसे संस्थागत ढांचे की मांग की जिसके माध्यम से शासन के विकेंद्रीकरण एवं विकास योजनाओं में जनता की भागीदारी सुनिश्चित हो सके |"[30]

सिंघवी समिति की सिफारिशों के मद्धेनजर ही 1988 में बनी पी.के. थुंगन समिति ने पंचायतीराज संस्थाओं को मजबूती प्रदान करने हेतु, उन्हें संवैधानिक दर्जा देने की सिफारिशें दोहराई | इसी के आधार पर 64 वाँ संशोधन विधयेक 1989 में पेश किया गया, जो कि लोकसभा में पारित होने के बावजूद राज्य सभा में गिर गया | 1990 में वी.पी. सिहँ सरकार ने पुनः एक संविधान संशोधन विधेयक लोकसभा में पेश किया लेकिन सरकार गिरने की वजह से यह प्रयास पुनः असफल हो गया | और अंततः पी.वी. नरसिम्हा राव सरकार ने कुछ विवादास्पद प्रावधानों को हटाते हुये 1991 में एक संशोधन प्रस्ताव पेश किया जो की 73 वें संशोधन अधिनियम 1992 के रूप में पारित हो गया एवं 24 अप्रैल 1993 से पूरे देश में लागू हुआ |"[31]

73 वाँ संशोधन –

पृष्ठभूमि - भारत में स्थानीय शासन संस्थाओं में अब तक अनेक खामियों और बाधाओं को महसूस किया गया | जैसे कि अनियमित चुनाव, राज्य सरकारों द्वारा इन्हें बिना कारण भंग कर देना, आर्थिक अक्षमता, शक्ति व अधिकारों का अभाव, अनुसूचित जाति, जनजाति और महिलाओं का अपर्याप्त प्रतिनिधित्व एवं सबसे अहम् इन संस्थाओं को संवैधानिक मान्यता का अभाव, इत्यादि | ये सभी समस्यायें जिनके समाधान की मांग जब तब भिन्न-भिन्न मंचो से लगातार उठाई जाती रही हैं | इन

समस्याओं के समाधान के लिये अब तक जो भी प्रयास किये गए उनका संक्षिप्त परिचय यहाँ दिया है |

क्र.स.	वर्ष	आयोग / योजना का नाम
1	1952	सामुदायिक विकास कार्यक्रम
2	1953	राष्ट्रीय विस्तार सेवा
3	1957	बलवंत राय मेहता समिति
4	1977	अशोक मेहता समिति
5	1985	जी. वी. के. राव समिति
6	1986	एल. एम. सिंघवी समिति
7	1989	पी. के. थुंगन समिति
8	1989	64 वां संविधान संशाधन

स्रोत – महिपाल "पंचायतीराज चुनौतियाँ एवं संभावनायें"

उपरोक्त प्रयासों के बावजूद भी जब एक लोकतान्त्रिक जीवन शैली को हासिल करने की दिशा में आशानुरूप परिणाम नहीं मिल सके | तो इस क्रम में 73 वें एवं 74 वें संशोधन के रूप में भारत में लोकतांत्रिक विस्तार के माध्यम से स्थानीय शासन संस्थाओं को संवैधानिक दर्जा देते हुये विशेष प्रावधान किये गए |"[32]

उद्देश्य -

1. ग्राम सभा एवं ग्राम पंचायत का गठन करना |
2. पंचायत सदस्यों का प्रत्यक्ष चुनाव कराना, जिसमे अनुसूचित जाति एवं जनजाति को आरक्षण दिया जा सके |

3. महिलाओं के लिये कम से कम एक तिहाई आरक्षण देना |
4. पंचायतों का निश्चित कार्यकाल व समय पर निष्पक्ष चुनाव कराना |
5. राज्यों द्वारा पंचायतों को पर्याप्त शक्ति देकर स्वायत शासन की संस्था बनाना |
6. राज्यो द्वारा पर्याप्त वित्त उपलब्ध करवाना |
7. स्थानीय स्तर पर योजनाओं का निर्माण करवाना |

73 वें संशोधन की विशेषताएं -

इस अधिनियम के प्रावधानों को दो भागों (क) अनिवार्य एवं

(ख) ऐच्छिक में विभाजित किया गया है |

(क) अनिवार्य -

ग्राम सभा - जिसमे पंचायत क्षेत्र के सभी पंजीकृत वयस्क मतदाता शामिल हागें |

पंचायत का गठन - ग्राम, मध्यवर्ती और जिला इन तीन स्तरों पर पंचायतों का गठन होगा | लेकिन 20 लाख से कम जनसंख्या वाले राज्यों को मध्यम स्तर से छूट प्राप्त होगी |

पंचायत की संरचना - तीनों स्तरों पर सदस्यों के स्थान सीधे चुनाव से भरे जाएगें | ग्राम स्तर पर अध्यक्ष का चुनाव राज्य द्वारा निर्धारित रीति से एवं मध्यम व जिला स्तर के अध्यक्ष का चुनाव सदस्यों द्वारा अपने में से ही किया जायेगा |

आरक्षण - सभी पंचायतों में अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति को उनकी जनसंख्या के अनुपात में एवं कुल स्थानों में एक तिहाई स्थान अध्यक्षों सहित महिलाओं के लिए आरक्षित होंगें |

कार्यावधी - पंचायतों का कार्यकाल पांच वर्ष होगा | एवं कुछ विशेष उपबंध -

(क) इन संस्थाओं के चुनाव उनकी कार्यावधी समाप्त होने से पहले करवा लिये जायेंगें |

(ख) संस्थाएं समय से पहले भंग किये जाने की स्थिति में चुनाव, भंग की गई तिथि से 6 माह की अवधि से पहले करवाने होंगें |

(ग) भंग किए जाने के बाद चुनी नई पंचायत शेष अवधि के लिए ही कार्य करेगी |

राज्य वित्त आयोग – राज्यपाल हर पांच वर्ष बाद राज्य वित्त आयोग का गठन करेगा जो कि पंचायतों की आर्थिक स्थिति के सम्बन्ध में सिफारिशें देगा |

राज्य चुनाव आयोग – राज्यपाल द्वारा चुनाव आयोग की स्थापना की जायेगी | जो कि निर्वाचक नामावलीयों व स्थानीय शासन संस्थाओं के चुनावों से सम्बंधित सभी कार्यों को करेगा |

(ख) ऐच्छिक प्रावधान -

1. पंचायतों के तीनो (या दो जो भी हों) स्तरों की पंचायतों के नाम रखने |

2. पंचायतों के अध्यक्षों के नाम रखने की स्वतंत्रता |

3. पंचायतों के गठन – (क) इसमें ग्राम पंचायत अध्यक्ष के निर्वाचन की रीति |

    (ख) ग्राम पंचायत के अध्यक्ष को पंचायत समिति तथा पंचायत समिति के प्रधानों को जिला परिषद् का पदेन सदस्य बनाने के सम्बन्ध में |

    (ग) सांसदों व विधायकों को मध्यम व जिला स्तर पर सदस्यता देने |

4. पंचायतों को शक्तियां व अधिकार सौंपने की शक्ति विधानमंडलों को होगी |

5. वित्तिय अधिकार सौपने की जिम्मेवारी राज्य पर ही होगी |

6. अंकेक्षण - पंचायती राज ईकाईयों के लेखा-जोखा के सम्बन्ध में प्रावधान करने की शक्ति राज्यों के पास होगी |

राजस्थान में पंचायती राज की औपचारिक शुरूआत तात्कालीन बीकानेर रियासत ने 1920 में ग्राम पंचायत कानून पारित करके की | इसके बाद 1948 में माणिक्यलाल वर्मा के नेतृत्व में संयुक्त राजस्थान सरकार द्वारा पंचायती राज अध्यादेश पारित किया गया व पंचायतों की स्थापना की गई |

राजस्थान में पंचायती राज व्यवस्था का विकास संक्षेप में निम्नानुसार रहा है

गठन वर्ष	**गठित समिति या आयोग**
1948	पंचायती राज अध्यादेश लागू हुआ
1954	राजस्थान पंचायती राज अधिनियम बना
1959	बलवंतराय मेहता समिति की सिफारिशें लागू हुई
1964	सादिक अली समिति बनी
1973	गिरधारी लाल व्यास समिति बनी
1990	हरलाल सिंह खर्रा समिति बनी
1994	नया पंचायती राज अधिनियम बनाया गया

राजस्थान पंचायती राज अधिनियम 1994 – इसमें पहले से लागू राजस्थान के दोनों अधिनियमों को मिला दिया गया | इस संशोधन द्वारा ग्राम पंचायत के सरपंचों को

पंचायत समिति तथा पंचायत समिति के प्रधानों को जिला परिषद् का पदेन सदस्य बनाया गया | साथ ही "ग्राम सभा" को भी प्रभावी बनाया गया है |"[33] यह अधिनियम राजस्थान में 23 अप्रैल, 1994 को राज्यपाल की अनुमति के उपरांत लागू किया गया । राजस्थान पंचायत अधिनियम, 1994 की धारा 9 से 12 में पंचायती राज संस्थाओं से सम्बंधित प्रावधान किये गए हैं जो कि 73 वे संविधान संशोधन के अनुरूप ही बनाये गए हैं |"[34]

ग्राम सभा की अनिवार्यता - साल में दो बार ग्रामसभा बुलाया जाना अनिवार्य होगा साथ ही ग्राम सभा के सुझावों पर पंचायत को विचार करना जरूरी होगा |

आरक्षण की व्यवस्था - अध्यक्षों सहित सभी पदों पर महिलाओं को एक तिहाई एवं अनुसूचित जाति व जनजाति को जनसंख्या के अनुपात में देना होगा |

राज्य वित्त आयोग की स्थापना – राज्यपाल के लिये राज्य वित्त आयोग की स्थापना करना अनिवार्य होगा | 23 अप्रैल, 1994 को प्रथम राज्य वित्त आयोग का गठन भी कर दिया गया |

राज्य निर्वाचन आयोग का गठन – राज्यपाल द्वारा किया जायेगा | दिसम्बर 1994 से मार्च 1995 के बीच इसी अधिनियम के अनुसार पंचायती राज संस्थाओं के चुनाव भी करवा दिए गए |

राजस्थान पंचायती राज में संशोधन – 2000 में संशोधन के द्वारा वार्ड सभाओं के गठन का नया प्रावधान किया गया |

वार्ड सभा और उसकी बठैकें -

1. हर वार्ड में एक वार्ड सभा होगी, जिसमें वार्ड के सभी वयस्क नागरिक शामिल होंगे |

2. वार्ड सभा की हर वर्ष कम से कम दो बैठक होनी चाहिए, परन्तु विशेष बैठक जब भी सक्षम प्राधिकारी आवश्यक समझें बुला सकते हैं |

ग्राम सभा - ग्राम सभा को भी विशेष महत्व दिया गया है | ग्राम सभा की प्रत्येक वर्ष कम से कम दो बैठकें आवश्यक होंगी | दो बैठकों के बीच का समय छः महीने से अधिक का नहीं होना चाहिए | पूरी पंचायत ही एक ग्राम सभा होगी, जिसमें पंचायत क्षेत्र में शामिल गांव के सभी निर्वाचक शामिल होंगे |

3. वित्तीय वर्ष की पहली तिमाही वाली बैठक में ग्राम सभा के सामने पंचायत आवश्यक दस्तावेज पेश करेगी – जैसे पिछले वर्ष के लेखों का विवरण, प्रशासन की रिपोर्ट, चालू वित्तीय वर्ष के प्रस्तावित विकास और अन्य कार्यक्रम और पिछली संपरीक्षा रिपोर्ट |

4. वित्तीय वर्ष के अंतिम तिमाही की सभा मे पंचायत, ग्राम सभा के सामने निम्न विवरण पेश करगी - चालू वर्ष के उपगत खर्चों का विवरण, भौतिक और वित्तीय कार्यक्रमों की जानकारी, वित्तीय वर्ष के पहली तिमाही की बैठक में प्रस्तावित कार्य में किये गए परिवर्तनों से सम्बन्धित प्रस्ताव और पंचायत का बजट एवं कर प्रस्ताव |

गणपूर्ति- दशांश से होगी जिसमें से अनुसूचित जाति, जनजाति, पिछड़ा वर्ग और महिला सदस्यों की उपस्थिति उनकी जनसंख्या के अनुपात में होनी चाहिये |

बैठक की अध्यक्षता - सरपंच / उपसरपंच या अन्य सदस्य जो की विधि द्वारा विहित हो |

सर्तकता समिति का गठन व कार्य – इसमें वें व्यक्ति होगें जो कि पंचायत के सदस्य नहीं हों | ऐसी सर्तकता समिति अपनी रिपोर्ट ग्राम सभा की बैठक में प्रस्तुत करेगी |

राजस्थान पंचायती राज संशोधन अधिनियम 2014 के मुख्य प्रावधान –

1. महिलाओं के लिये कुल पदों के 50 प्रतिशत स्थान अध्यक्षों सहित सभी स्तरों पर आरक्षित कर दिए गए |
2. पहली बार पंचायत प्रतिनिधियों के लिये शैक्षणिक योग्यता अनिवार्य कर दी गई |
3. पहली बार पंचायत प्रतिनिधियों के लिये घर में शौचालय की अनिवार्यता लागू कर दी गई |

भारतीय राजनीति में महिला प्रतिनिधित्व व्यावहारिक स्थिति -

"लोकतंत्र के बारे में 1949 में युनस्को ने अनेक देशो के विद्वानों से कुछ जानकारी जुटाई, जिसमे लोकतंत्र के विपक्ष में कोई जबाब नहीं मिले | हालाँकि कुछ अस्पष्टता थी तो वह लोकतंत्र के विचार के विषय में थी | लेकिन इस पर सभी सहमत थे कि लोकतंत्र को मूर्त रूप देने में वहाँ की सांस्कृतिक एवं सामाजिक परिस्थितियां मुख्य कारक होती हैं |"[35] अर्थात् लोकतंत्र को व्यवहारिक स्तर पर क्रियान्वित करते समय बड़े आकार, क्षेत्रिय विविधता व विशाल जनसंख्या वाले राष्ट्रों में राजनीतिक क्षेत्र में जनता को प्रत्यक्ष भागीदारी के अवसर बहुत ही सीमित मात्रा में मिल पाते हैं | इससे कई तरह की विसंगतियों व विद्रोही प्रवृतियों का उद्भव होता है, जो की लोकतान्त्रिक प्रणाली के स्वास्थ्य के लिये हानिकारक होता है |

इसलिए लोकतंत्र का सहभागी मॉडल ही उपयुक्त प्रतीत होता है | जिसमे आमजन की राजनीतिक सहभागिता को लोकतंत्र का मुख्य लक्षण समझा जाता है | यानि कोई भी व्यक्ति सार्वजानिक नीतिओं के सम्बन्ध में निर्णय प्रक्रिया एवं क्रियान्वन को प्रभावित करने के लिये स्वतंत्र होता है | राजनीतिक सहभागिता द्विआयामी प्रक्रिया है , जिसमे सरकार व नागरिक दोनो को ही पहल करने की आजादी मिली होती है | इसके लिये परम्परागत व गैर परम्परागत दोनो ही तरह के साधन अपनाये जा सकते हैं | राजनीतिक सहभागिता के पीछे यह तर्क दिया जाता है कि, इससे व्यक्ति न केवल अपने हितों की रक्षा कर सकता है, बल्कि उसमे जागरूकता भी आती है और सामान्य हितों को बढ़ावा मिलता है | रूसो जैसे विचारक भी सार्वजानिक निर्णयों में लोगों की प्रत्यक्ष सहभागिता के ज्यादा से ज्यादा विस्तार के समर्थक रहे हैं | प्रत्यक्ष सहभागिता को दो प्रकार से बढ़ाया जा सकता है, जिसको वर्तमान समय में बड़ी लोकतान्त्रिक शासन प्रणालियों में अपनाया जाता रहा है | पहला जनमत संग्रह के रूप में एवं दूसरा लोकतान्त्रिक विकेंद्रीकरण | विश्व में लोकतान्त्रिक शासन प्रणालियों में इन दोनो ही तरीको को अपनाया गया है | अतः वैश्विक स्तर पर अनेक शासन प्रणालियों ने अपने - अपने ढंग एवं परिस्थितियों के अनुसार इस तरह की मांगों को समायोजित करने के प्रयास किये हैं |"[36]

भारत में संघात्मक शासन की त्रिस्तरीय प्रशासनिक व्यवस्था के रूप में संघीय, प्रांतीय और स्थानीय स्वशासन की व्यवस्था को अपनाते हुये विकेंद्रीकरण को पर्याप्त महत्व दिया गया है | गांधीजी के शब्दों में "वास्तविक प्रजातन्त्र नीचे से गांव के लोगों को चलाना होगा इसे केन्द्र में बैठें हुए कुछ लोगों द्वारा नहीं चलाया जा सकता है |" भारत की ग्रामीण संस्थाओं में यहां की प्राचीन राजनैतिक संस्कृति के दर्शन किये जा सकते हैं | गांधीजी के विचारों में प्रजातांत्रिक विकेन्द्रीकरण तथा स्थानीय शासन के महत्व की स्पष्ट झलक मिलती है | अतः राजनीतिक विकेन्द्रिकरण

के बिना लोकतंत्र को मजबूत आधार नहीं दिया जा सकता है | और जब जन, धन एवं शक्ति विकेन्द्रित रहेगी तो राष्ट्रीय स्तर पर किसी भी प्रकार की अशांति नहीं हो सकती है |"[37]

विकेन्द्रित व्यवस्था मे जनता अपने विकास एवं कल्याण संबंधी कार्यो के लिए सरकार पर निर्भर नहीं रहेगी | बल्कि स्वयं अपने संसाधनों से आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए तत्पर रहेगी, क्योंकि उसके पास सत्ता ही नहीं, अधिकार और उनका उपयोग करने की शक्ति भी होती है | प्रजातांत्रिक विकेन्द्रिकरण जनता में स्वावलम्बन की भावना को भरकर समस्याओं का समाधान खोजने के लिये प्रेरित करता है | जिससे चंहुमुखी विकास एवं मितव्यता दोनो हासिल की जा सकती है | इससे शासन व्यवस्था के लिए जनसहयोग उपलब्ध होता है एवं आमजन विकास के प्रति सचेत हो जाता है | साथ ही उत्तरदायित्व की भावना एवं पिछड़े वर्गों में नवीन चेतना का विकास हुआ |"[38] पंचायती राज में अनुसूचित जातियों, जनजातियों व पिछड़े वर्गों हेतु आरक्षण के प्रावधान से इन वर्गों की राजनीतिक सहभागिता मे निश्चित रूप से वृद्वि हुई है | सत्ता के वास्तविक विकेन्द्रीकरण एवं सभी वर्गो की भागीदारी सुनिश्चित करने की दृष्टि से पंचायती राज संस्थाओं मे प्रत्यक्ष निर्वाचन द्वारा भरे जाने वाले स्थानों मे उनके लिये आरक्षण की व्यवस्था की गई है | संविधान मे अनुच्छेद 243 जोड़ते हुए देश में पंचायती राज संस्थाओं से संबंधित आवश्यक तत्वों का न केवल समावेश किया गया है अपितु पंचायती राज संस्थाओं को संवैधानिक मान्यता और चुनावों से संबंधित प्रत्यानुभूति प्रदान की गयी है |"[39] पंचायत की स्थापना करना गांधीजी ने बहुत ही आवश्यक समझा क्योंकि "जब पंचायत राज स्थापित हो जाएगा तब जनमत वह सब कर पायेगा, जो किसी भी तरह के हिंसक साधनों द्वारा नहीं किया जा सकता है | पंचायत राज व्यवस्था के माध्यम से ही सामुदायिक विकास के उद्देश्य की पूर्ति हो सकती है | सामुदायिक

विकास कार्यक्रम ग्रामीण जीवन स्तर को ऊंचा उठाने एवं स्थानीय मानव शक्ति को संगठित, क्रियाशील व समन्वित करने का प्रयास है |"[40]

भारत में स्थानीय स्वायत्त शासन के एक नये अध्याय की शुरूआत करते हुये इसे राज्य सूची के विषय के रूप में स्पष्ट किया गया है, कि राज्य ग्राम पंचायतों का गठन करते हुये उन्हें आवश्यक शक्तियां भी प्रदान करेंगे | जिससे वे स्थानीय स्वायत्त शासन की इकाईयों के रूप मे कार्य कर सके |"[41] भारत में भी पंचायती राज को प्रत्यक्ष सहभागिता के विस्तार एवं आम नागरिकों को मुख्यधारा में शामिल करने के प्रयास के रूप में ही देखा जा सकता है | जिसमे अनुसूचित जाति, जनजाति एवं पिछड़े वर्गों के साथ ही महिला वर्ग की असंतोष भरी उत्तेजक मांग को संतुलित करने का प्रयत्न किया गया | अर्थात् लोकतंत्र की संघीय प्रणाली के तीसरे स्तर के रूप में पंचायतें एवम नगर पालिकायें नाम से दो नये अध्याय संविधान में जोड़ दिए गए हैं | "इस प्रकार से भारत में त्रिस्तरीय संघात्मक शासन व्यवस्था की स्थापना संभव हुई |"[42] जिसमे महिलाओं का राजनीतिक प्रतिनिधित्व सुनिश्चित करने हेतु एक तिहाई पदों को आरक्षित कर दिया गया | जिसने की 73 वें एवम 74 वें संविधान संशोधन के रूप में महिला आरक्षण के रूप में ख्याति प्राप्त की है |

इस तरह से इन दोनों संवैधानिक संशोधनों के मूलभूत प्रावधानों के अधीन यह व्यवस्था पूरे देश में 01 अप्रैल 1994 से विधिवत रूप से लागू हुई | हालांकि स्थानीय शासन राज्य सूची का विषय है इसलिय ये सभी प्रावधान राज्यों को अपनी पारिस्थितिक या स्थानीय विभिन्नता व मूलभूत समानताओं के साथ लागु करने थे | अतः सभी राज्यों ने स्थानीय जरूरतों एवं विभिन्नता को ध्यान में रखते हुए तथा इन मूलभूत प्रावधानों की भावना के अनुसार ही कुछ अतिरिक्त प्रावधान भी शामिल किये हैं | इसी क्रम में एक कदम और आगे बढ़ते हुये कुछ राज्यों में महिलाओं के लिए स्थानीय शासन में 33 प्रतिशत के स्थान पर 50 प्रतिशत स्थान आरक्षित करने का साहसिक फैसला भी लिया है | इस जमात में राजस्थान राज्य भी 2014 में शामिल

हो गया है | इन प्रावधानों के माध्यम से यह तो सुनिश्चित हो गया की अब स्थानीय शासन में महिलाओं को न केवल आरक्षित पचास प्रतिशत स्थानों बल्कि इसके आलावा कुछ अनारक्षित स्थानों पर भी निर्वाचित होने के अवसर उपलब्ध रहेंगे | इस तरह स्थानीय शासन में कुल निर्वाचित महिला प्रतिनिधियों की संख्या हमेशा पचास प्रतिशत से अधिक ही रहेगी इससे कम नहीं हो सकती | यानि की निर्वाचित प्रतिनिधियों के मामले में तो महिलायें पुरुषों से भी एक कदम आगे निकल गयी हैं |

लेकिन मुद्दा सिर्फ आरक्षण या निर्वाचन का ही नहीं बजाय इसके वास्तविक भूमिका निर्वहन, प्रभावशीलता एवं उत्पादकता का है | अर्थात् महिलाओं को स्थानीय शासन में दिए गए पचास प्रतिशत आरक्षण को उचित, फायदेमंद व प्रभावशाली सिद्ध करने वाले कुछ संकेतक नज़र आने चाहिए | प्रथम यह कि क्या निर्वाचित महिला प्रतिनिधि अपनी भूमिका निभाने में रूची रखती हैं एवम् कितनी सक्षम हैं ? द्वितीय यह कि क्या महिला प्रतिनिधियों को अपने प्राधिकार क्षेत्र में आने वाली बाधाओं एवम् चुनौतियों का सामना करने का साहस, धैर्य व संयम है ? तीसरी स्थानीय शासन में महिला प्रतिनिधित्व की प्रभावशीलता एवम् उपलब्धियां क्या व कैसी रही हैं ? अतः इन सब बातों को ध्यान में रखते हुये यह अध्य्यन अलवर (राजस्थान) जिले में ग्रामीण स्थानीय शासन पर आधारित है | जिसमें महिला प्रतिनिधियों की वास्तविक स्थिति एवम् उनके समक्ष चुनौतियों के साथ-साथ उपलब्धियों व संभानाओं की तलाश के प्रयास मुख्य आकर्षण रहे हैं |

---

[1] चौधरी बासुकी नाथ (संपादक- बी. एन. चौधरी, युवराज कुमार) (2013) *भारत में संवैधानिक लोकतंत्र एवं शासन,* हिन्दी माध्यम कार्यान्वन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, पृ. -1.

[2] सरकार सुमित (2015) *आधुनिक भारत*, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 474, 475.

[3] चंद्रा विपिन, मुखर्जी मृदुला, मुखर्जी आदित्य, पनिकर के.एन., महाजन सुचेता, (2010) *भारत का स्वतंत्रता संघर्ष,* हिन्दी माध्यम कार्यान्वन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, पृ. – 496.

[4] प्रधान रामचन्द्र (2015) *राज से स्वराज, भारत में उपनिवेशवाद और राष्ट्रवाद,* हिन्दी माध्यम कार्यान्वन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, पृ. – 424, 425.

[5] चौधरी बासुकी नाथ (संपादक- बी. एन. चौधरी, युवराज कुमार) (2013) *भारत में संवैधानिक लोकतंत्र एवं शासन,* हिन्दी माध्यम कार्यान्वन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, पृ. -5.

[6] आर्य साधना, मेनन निवेदिता, लोकनीता जिनी (संपादक), (2015) *नारीवादी राजनीति संघर्ष एवं मुद्दे,* हिन्दी माध्यम कार्यान्वन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, पृ. – 341, 342.

[7] काश्यप सुभाष (1998), *संसदीय लोकतंत्र का इतिहास* (संविधान सभा वाद-विवाद खंड-ii से), हिन्दी माध्यम कार्यान्वन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, पृ. -119, 120.

[8] बासु डी. डी. (2008) *भारत का संविधान एक परिचय,* लेक्सिस नेक्सिस बेटरवेर्थस वाधवा नागपुर, नई दिल्ली, पृ. -20, 21.

[9] काश्यप सुभाष (1998), *संसदीय लोकतंत्र का इतिहास,* हिन्दी माध्यम कार्यान्वन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, पृ. -186.

[10] वही, पृ. -185.

[11] बोसांके बी, *दा फ़िलोसोफिकल थ्योरी आफ स्टेट* पृ.197

[12] मिश्र कृष्णकांत (2001), *राजनितिक सिद्दांत और शासन, मार्क्सवाद और उद्दरवाद,* ग्रन्थ शिल्पी (इंडिया) प्रा. लि. दिल्ली पृ. – 250.

[13] आर्य साधना, मेनन निवेदिता, लोकनीता जिनी (संपादक), (2015) *नारीवादी राजनीति संघर्ष एवं मुद्दे,* हिन्दी माध्यम कार्यान्वन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, पृ. – 108.

[14] देसाई नीरा, ठक्कर ऊषा, (अनु.- सुभी घुसिया), (2015) *भारतीय समाज में महिलायें,* राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत, नई दिल्ली, पृ.- 90.

[15] काश्यप सुभाष (1998), *संसदीय लोकतंत्र का इतिहास,* हिन्दी माध्यम कार्यान्वन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, पृ. -185.

[16] आर्य साधना, मेनन निवेदिता, लोकनीता जिनी (संपादक), (2015) *नारीवादी राजनीति संघर्ष एवं मुद्दे,* हिन्दी माध्यम कार्यान्वन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, पृ. – 268.

[17] चौबे शिबानी किंकर, (अनुवाद – सिंह के. बी.) *भारतीय संविधान रचना एवं कार्य,* राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत, नई दिल्ली, पृ.- 183.

[18] मिश्र कृष्णकांत (2001), *राजनितिक सिद्दांत और शासन, मार्क्सवाद और उद्दरवाद,* ग्रन्थ शिल्पी (इंडिया) प्रा. लि. दिल्ली पृ. – 382, 383.

[19] महिपाल (2015) पंचायती राज चुनौतियाँ एवं संभावनायें, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत, नई दिल्ली, पृ.- 5.

[20] नेहरू जवाहरलाल (1990) *हिंदुस्तान की कहानी* सत्ता साहित्य मण्डल प्रकाशन,नै दिल्ली, पृ.- 335.

[21] सेठ समता (2002) पंचायती राज, हिमांशु पब्लिकेशन्स, उदयपुर, पृ.- 9.

[22] शर्मा अशोक (2011) *भारत में स्थानीय प्रशासन,* आर.बी.एस.ए. पब्लिशर्स, जयपुर, पृ. –16.

[23] महिपाल (2015) पंचायती राज चुनौतियाँ एवं संभावनायें, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत, नई दिल्ली, पृ.- 9, 10.

[24] काश्यप सुभाष (1998), संसदीय लोकतंत्र का इतिहास, हिन्दी माध्यम कार्यान्वन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, पृ. -185

[25] महिपाल (2015) पंचायती राज चुनौतियाँ एवं संभावनायें, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत, नई दिल्ली, पृ.- 11, 12.

[26] वही, पृ.- 12.

[27] शर्मा गिरिराज (2008) *पंचायती राज एवं कमजोर वर्ग,* आलेख पब्लिशर्स जयपुर, पृ. – 39.

[28] महिपाल (2015) पंचायती राज चुनौतियाँ एवं संभावनायें, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत, नई दिल्ली, पृ.- 19.

[29] शर्मा अशोक (2011) *भारत में स्थानीय प्रशासन*, आर.बी.एस.ए. पब्लिशर्स, जयपुर, पृ. – 25.

[30] महिपाल (2015) पंचायती राज चुनौतियाँ एवं संभावनायें, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत, नई दिल्ली, पृ.- 21.

[31] कुमार मनीष (2015) *लोकतान्त्रिक विकेंद्रीकरण और स्थानीय स्वशासन*, दी बुक लाईन, नई दिल्ली, पृ. 192,193.

[32] शर्मा ब्रजकिशोर (2015) *भारत का संविधान एक परिचय,* पी.एच.आई. लर्निंग प्रा. लि. नई दिल्ली पृ.- 301,302.

[33] मिश्र निरंजन (2006) *भारत में पंचायतीराज,* परिबोध पब्लिशर्स, जयपुर, पृ.-232.

[34] पुरोहित अमित (2011) *पंचायतीराज कानून और विधान,* पत्रिका प्रकाशन जयपुर, पृ.- 27-134.

[35] मिश्र कृष्णकांत (2001), राजनितिक सिद्दांत और शासन, मार्क्सवाद और उद्दरवाद, ग्रन्थ शिल्पी (इंडिया) प्रा. लि. दिल्ली पृ. – 381.

[36] गुप्ता आशा (2016) *तुलनात्मक सरकार और राजनीति,* हिन्दी माध्यम कार्यान्वन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, पृ. – 545,546.

[37] दत्त महेश्वर (2003) *गाँधी का पंचायतीराज* (जे.सी.कुमारप्पा) हिन्दी मा. का. निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, पृ.– 18.

[38] सिंह महेंद्र प्रसाद, राय हिमांशु (2013) *भारतीय राजनितिक प्रणाली संरचना,नीति ओर विकास*, हिन्दी माध्यम कार्यान्वन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, पृ. - 207,208.

[39] सिंह विजय करण (2005) *पंचायती राज व्यवस्था* आर.बी.एस.ए. पब्लिशर्स, जयपुर, पृ. 2.

[40] जोशी आर.पी., मंगलानी रूपा (1998) *पंचायतीराज के नविन आयाम*, यूनिवर्सिटी बुक हाउस,जयपुर, पृ. -130.

[41] सेठ समता (2002) *पंचायतीराज*, हिमांशु पब्लिकेशन्स, उदयपुर, पृ.-21.

[42] मिश्रा नन्दलाल (2001) *नई पंचायती राज व्यवस्था और ग्रामीण विकास*, बी. एस. शर्मा एंड ब्रदर्स, आगरा, पृ. 26.